International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 22-07-2022, Accepted: 09-08-2022, Published: 24-08-2022
Volume 8, Issue 4, 2022, Page No. 87-89

केदारनाथ सिंह के काव्य का शिल्प

रवीन्द्र कुमार
असिस्टेंट प्रोफसर, उच्च शिक्षा विभाग, उत्तराखण्ड, भारत,

सारांश
केदारनाथ सिहं प्रगतिशील कवि, नार्गाजुन, त्रिलोचन शास्त्री, केदारनाथ अग्रवाल की भांति ज़मीनी कवि हैं। उनके काव्य परिदृश्य में चित्रों के साथ–साथ चरित्र को भी देखा जा सकता है । कवि की सवंदेना एवं अनुभव का ही परिणाम है कि 'कुदाल' नामक कविता में चित्र और चरित्र दोनों एक साथ खड़े दिखायी देते हैं। वे धैर्य एवं संयम के साथ अपने काव्य में तर्क को प्रस्तुत करते हैं । तर्क सभंवतः तंत्र की भांति प्रयोग में लाये जाते है। उनके काव्य में भाव–बोध को प्रगतिपरक तत्व के रूप में देखा जा सकता है जिस कारण उनके काव्य में एक लचक और धुँधले में चमकती हुई लकीर देखी जा सकती है। कवि केदारनाथ सिंह समकालीन कवियों में अग्रणी स्थान रखते हैं। वह अपने काव्य के माध्यम से समाज की छोटी–बड़ी सभी वस्तुओं को यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त करते है जिस कारण गांव से लेकर महानगर तक की समस्त वस्तुओं को उनके काव्य में सहजतापवूर्क देखा जा सकता है । उन्हानें बचपन के दिन गाँव में बिताये अध्ययन के लिए नगर की ओर पलायन किया तथा कार्य के लिए महानगर को चुना। इसलिए उनके काव्य में गाँव, नगर और महानगर की वस्तुओं का बारीकी से चित्रिण किया गया है।
कवि केदारनाथ सिंह का संपूर्ण काव्य–लेखन सामाजिक यथार्थ से ओत–प्रोत है । वह अपने काव्य–लेखन के माध्यम से निरंतर लोक–जीवन से जुड़े रहे हैं। मानव अपनी चेतना के द्वारा सामाजिक व्यवहारों का ज्ञान अर्जित करता है । इन्ही तत्वों को आधार बनाकर कवि केदारनाथ सिंह को लोक–जीवन का कवि कहा जाये तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी, क्योंकि लोक–जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करने वाला कवि लोक की मिटट्ी का गायक एवं वाहक होता है। उसकी रग–रग में लोक–जीवन का परिवे ा और वहाँ की गंध समाहित होती है। कवि इस गंध को साहित्य में पिरोता हुआ नज़र आता है। एक प्रणय गीतकार के पश्चात वे सामाजिक यथार्थ से जुड जाते है और सामाजिक यथार्थ के समस्त पहलुओं को परत–दर–परत खोलते है । केदारनाथ सिंह अंततः एवं मूलतः किसान चेतना के कवि प्रतीत होते हैं। उनके काव्य को भारतीय कृषि प्रधान सस्कृति और जनपदीय एवं जातीय सस्कृति एवं सभ्यताओं के मध्य स्वीकार करना चाहिए। उनके काव्य में कोई भी बात सीधी–सीधी अभिव्यक्त होती नहीं दिखायी देती है,।

मूल शब्दः शिल्प–वैशिष्ट्य, आयात, बिंब, प्रतीक, मिथक, लय, तुक, उपमान, अकविता, बीट कविता, परिष्कार, वैज्ञानिक आदि

प्रस्तावना
'शिल्प' शब्द को समझने के लिए शिल्प से सबंधित तत्त्वों को समझना आवश्यक प्रतीत होता है जिससे कवि केदारनाथ सिंह के शिल्प–वैशिष्ट्य को सहजतापूर्वक समझा जा सकता है। काव्य का सृजन ही शिल्प के माध्यम से आरंभ होता है। मानवीय मस्तिष्क में निर्माण की प्रवृत्ति जागृत होते ही शिल्प का आविर्भाव हुआ होगा। 'शिल्प' शब्द अपने शुरूआती क्षण से मानव की रचनात्मक प्रतिभा को अभिव्यक्त करता हुआ चला आ रहा है। डॉ0 नगेन्द्र 'शिल्प' शब्द का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि ''शिल्प शब्द का आयात साहित्य–समीक्षा में प्रायः तब से हुआ है जब से ललित कलाओं के अन्तः सम्बन्ध तथा पारस्परिक अंतर्निवेश की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक स्तर पर विशेष चर्चा होने लगी है।''[1] शिल्प संबधी तत्वों की आवश्यकता पूर्ति हेतु भाषा, छन्द, गति, विराम, एवं संगीत मूल सिद्धान्त निश्चित होने चाहिए, वरना अलकांर शास्त्र की तरह काव्य–शिल्प केवल बाहरी सजावट बनकर रह जायेगा। काव्य–शिल्प के वैशिष्ट्य के अन्तर्गत जिन तत्वों की महती भूमिका रही है,उनकी गणना करना मुश्किल कार्य है, बल्कि शब्द योजना, भाषा, छन्द, बिंब, प्रतीक, मिथक, लय, तुक, उपमान, मुहावरे उपसर्ग–प्रत्यय आदि के साथ–साथ मुक्त कविता, छोटी कविता, लम्बी कविता, अकविता, बीट कविता, काव्य–नाटक, नवगीत, गीत आदि रूपों को जोड़कर शिल्प पक्ष का विस्तार किया जा सकता है । इन समस्त रूपों का प्रयोग तारसप्तक के कवियों ने सरलता एवं सहजतापूर्वक किया है। जिसका उल्लेख करते हुए गिरिजा कुमार माथुर लिखते हैं कि ''नये कवियों के साथ–साथ उपमान, प्रतीक, चित्र, रंग छन्द, लय, अन्तःसंगीत, भाषा और शब्द योजना के नवीन प्रयोग स्थिर हुए। इन सबने मिलकर रूप विधान की दिशा में एक व्यापक क्रांति उत्पन्न कर दी है।[2]
केदारनाथ सिहं के काव्य के शिल्प वैशिष्ट्य् के अन्तर्गत बिबं, प्रतीक, मिथक, छन्द एवं भाषा का उल्लेख किया जा सकता है। उनके काव्य में बिंब की महत्ता को देखते हुए उसे एक अलग अध्याय में व्याख्यायित किया गया है। इस अध्याय में उनकी भाषा एवं प्रतीक संबंधी विशेषताओं का उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार है– नये कवियों ने उपर्युक्त समस्त रूपों में भाषा और छन्द को अपने काव्य–शिल्प में विशशे महत्व दिया है। इसका प्रमुख कारण यह हो सकता है कि पश्चिमी साहित्य में भी भाषा को विशेष स्थान प्राप्त था। सच्चाई यह है कि काव्य में सबसे पहले शब्द और भाषा ही आते है। शब्दों की अर्थवत्ता को सटीक रूप में अभिव्यक्त कर रचना को सुदृढ़ एवं सार्थक बनाया जा सकता है। केदारनाथ सिंह अपने एक साक्षात्कार में काव्य–भाषा के प्रश्न पर विचार अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं–''भाषा का सवाल एक बड़ा

सवाल है। यदि मैं कहूँ तो एक कवि के लिए वह जीवन–मरण का सवाल है। मैं भाषा को लोंगों की जुबान पर से ले आने की कोशिश करता हूँ। और साथ ही यह भी कोशिश करता हूं कि हिन्दी का जो अपना ख़ास मिजाज़ है उससे छेड–छाड़ न की जाए। एक चीज़ की ओर मेरा ध्यान बराबर रहा है कि शब्दों को उनकी जड़ों से ही लाया जाए। जड़ों से मेरा मतलब जीवन के उन श्रोतों से है, जहाँ से शब्द नया अर्थ ग्रहण करते हैं। यहाँ यह कहना ज़रूरी समझता हूँ कि मेरे निकट शब्द अपने आप में महत्वपूर्ण नहीं होते, बल्कि वे अपने पूरे विन्यास में रच–खपकर ही अर्थवान होते है । समकालीन हिदी कविता की भाषा से जो कई बार एक अनुवादपन की गंध आती है, मैं उसे अस्वस्थकर मानता हूँ। यह देखकर मुझे अच्छा लगता है कि नए उभरते हुए और ख़ास तौर से ऐसे रचनाकार जो हिदी के अलग–अलग क्षेत्रों से सामने आ रहे है उनमें भाषा के इस खतरे के प्रति एक चुपचाप सजगता और सक्रियता दिखलाई पड़ती है।''[3]

आधुनिक युग के कवियों में भाषा के प्रति सजगता दिखायी देती है। नये कवियों के काव्य में विचारों की विविधता के बावजदू उनकी काव्य–भाषा में समानता देखी जा सकती है। जिसका दोहरा प्रयोजन बताते हुए अज्ञेय लिखते हैं कि ''एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का साधन है ।''[4] बोलचाल की सहज भाषा के विपरीत अगर उसमें अत्यधिक मिठास है या चटख़ारापन है तो ऐसी भाषा श्रेश्ठ साहित्य में अपना स्थान नही बना सकती। रामविलास शर्मा इसी ओर संकेत करते हुए लिखते हैं–''भाषा में अत्यधिक मिठास की खोज सामाजिक ह्यस का चिन्ह है। वैसे ही वाक्पटुता ज़बान का चटखारा अत्यधिक परिष्कार और बनाव–सिंगार आदि ऐसे गुण हैं जो पतनशील साहित्य में मिलते हैं।''[5]

डॉ0 हरदयाल लिखते हैं कि ''नकेनवादी प्रयोगवादियों का मानना है कि कविता एक ओर भावों विचारों अथवा दर्शनों से नही लिखी जाती, दूसरी ओर छंदो और अलंकारों आदि से भी नहीं लिखी जाती, वह शब्दों से लिखी जाती है।''[6]

कवि केदारनाथ सिंह के आरभिक दौर की काव्य–भाषा में कोमलता, रागात्मकता, स्निग्धता एवं गीतात्मकता दिखायी देती है। उनके गीतों में ध्वन्यात्मकता एव लयात्मकता प्रचुर मात्राा में प्राप्त है। केदार जी की काव्य–भाषा अज्ञेय की काव्य–भाषा से मिलती–जुलती दिखायी देती है। जिसे 'नये वर्ष के प्रति' नामक कविता में देखा जा सकता है–

''अनछुए तट
या कि रास्तों के नये भटकाव
धूपगंधी पंख चिड़ियों के
कि टूटे आँधियों के पाँव!
निहाई पर चोट घन की
याकि छेनी से निकलते
फूल, आँसू, ऋचाएँ
मन के रुँधे सब बोल
गिरे पालों की उदासी।।

केदारनाथ सिंह अपने काव्य में ग्रामीण जीवन से सबंधित भाषा का प्रयोग करते हैं । उनका ग्राम्य एवं आँचलिक परिवेश से निकट संबंध होने के कारण शब्द सायास काव्य का रूप धारण कर लेते हैं। यही कारण है कि कवि जिस शब्द की जड़ों को अभिव्यक्त करता है उसका स्वयं उसी जड़ से सानिध्य दिखायी देता है जिसका एक उदाहरण 'माँझी का पुल' नामक कविता में देखा जा सकता है–

''मैंने पहली बार
स्कूल से लौटते हुए
उसकी लाल लाल ऊँची मेहराबें देखी थीं
यह सर्दियों के शुरू के दिन थे
जब पूरब के आसमान में
सरसों के झुण्ड की तरह डैने पसारे हुए
धीरे–धीरे उड़ता है माँझी का पुल!''[8]

कवि केदारनाथ सिंह का अटूट विश्वास है कि भाषा ही मनुष्य के जीवित अस्तित्व को सजोकर रख सकती है। इसलिए वे भाषा को मानव की जवाबदेही के रूप में स्वीकार करते हैं। भाषा के प्रयोग में, शब्दों के चयन में कोई भूल–चूक उन्हें बर्दाश्त नहीं है। 'एक ठेठ देहाती कार्यकर्ता के प्रति' नामक कविता में कवि इसी बात की ओर संकेत करता है–

''तिलमिला उठता हूँ मैं
मैं बेहद परेशान हो जाता हूँ
उसकी ग़लत–सलत भाषा
उसके शब्दों से गिरती धूल
और उसके उन बालों पर
जो उसके माथे से पूरी तरह उड़ गये हैं!''[9]

केदारनाथ सिंह अपनी काव्य–भाषा में बिंब, व्यंग्य, प्रतीक, मिथक आदि के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करते हैं। कवि का अपनी मातृभाषा से रागात्मक संबंध है। मातृभषा के माध्यम से व्यक्ति सहज रूप में अपना प्रतिरोध दर्ज कर सकता है, अन्यथा उसे चुप्पी साधनी पड़ती है। 'मातृभाषा' नामक कविता में कवि इसी ओर संकेत करते हुए कहता है–

''ओ मेरी भाषा मैं
लौटता हूँ तुम में
जब चुप रहते–रहते
अकड़ जाती है मेरी जीभ
दुखने लगती है
मेरी आत्मा!''[10]

केदारनाथ सिंह शब्दों के द्वारा ग्रामीण एवं शहरी जीवन के द्वन्द्व को वर्णित करते हैं। वे दोनों संस्कृतियों के आपसी तनाव को काव्य–भाषा का रूप देते हैं। उनके द्वारा प्रयोग किये गये शब्द मानव–जीवन को जीवंत बनाते हैं। गहरे संदेह की पीड़ा से उत्पन्न मंत्रा जीवन को अधिक जीवंत बनाता है। इसीलिए कवि 'विज्ञापन' नामक कविता में यही इच्छा व्यक्त करता है–

''एक मंत्र चाहिए मुझे
वह नहीं
जिससे जी उठते हैं मुर्दे
बल्कि वह जो निकला हो फूटकर
किसी गहरे संदेह की
पीड़ा से।''[11]

निष्कर्ष

केदारनाथ सिंह अपने काव्य में जीवन में व्याप्त विडंबनाओं को पहचानने में सजग एवं सचेत दिखायी देते हैं । जिस कारण उनके काव्य में एक कौंध भरी हलचल को महसूस किया जा सकता है । कवि केदारनाथ सिंह समकालीन कवियों में अग्रणी स्थान रखते हैं। वह अपने काव्य के माध्यम से समाज की छोटी–बड़ी सभी वस्तुओं को यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त करते हैं, जिस कारण गावँ से लेकर महानगर तक की समस्त वस्तुओं को उनके काव्य में सहजतापूर्वक देखा जा सकता है । उन्होनें बचपन के दिन गांव में बिताये अध्ययन के लिए नगर की ओर पलायन किया तथा कार्य के लिए महानगर को चुना। इसलिए उनके काव्य में गाँव, नगर और महानगर की वस्तुओं का बारीकी से चित्रण किया गया है। कवि केदारनाथ सिंह का सपूंर्णकाव्य–लेखन सामाजिक यथार्थ से आते–प्रोते है। वह अपने काव्य–लेखन के माध्यम से निरंतर लोक–जीवन से जुड़े रहे हैं। उनके काव्य में मानव–समाज के आतंरिक एवं बाह्य तत्वों का समन्वित यथार्थ झंकृत होता दिखायी देता है जिसे सामाजिक यथार्थ का मूलाधार कहा जा सकता है। मानव अपनी चेतना के द्वारा सामाजिक व्यवहारों का ज्ञान अर्जित करता है । इन्ही तत्वों को आधार बनाकर कवि केदारनाथ सिंह को लोक–जीवन का कवि कहा जाये तो इसमेंकोई अतिश्योक्ति नही होगी, क्योंकि लोक–जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करने वाला कवि लोक की मिटट्ी का गायक एवं वाहक होता है। उसकी रग–रग में लोक–जीवन का परिवेश और वहाँ की गंध समाहित होती है। कवि इस गंध को साहित्य में पिरोता हुआ नज़र आता है

सन्दर्भ सूची

1. नगेन्द्र (1980), शैली विज्ञान, महल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, द्वितीय सस्ंकरण–1980, पृ0 14 ।
2. सिंह, नामवर : आलोचना पत्रिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, जुलाई अंक–1954, पृ0 62 ।
3. सिंह, केदारनाथ : मेरे साक्षात्कार, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2008, पृ0 116 ।
4. अज्ञेय : दूसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, चौथा संस्करण–2012, पृ0 6 ।
5. शर्मा, रामविलास : भाषा साहित्य और संस्कृति, किताब घर प्रकाशन, इलाहाबाद–1959, पृ0 22–30 ।
6. हरदयालः आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1967, पृ0 147।
7. सिंह, केदारनाथः अभी बिल्कुल अभी, संभावना प्रकाशन, हापुड़, दूसरा संस्करण–1980, पृ0 65– 66।
8. सिंह, केदारनाथः ज़मीन पक रही है, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पंचम संस्करण–2012, पृ0 94
9. सिंह, केदारनाथः यहाँ से देखो, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवी आवृत्ति–2013, पृ0 11 ।
10. सिंह, केदारनाथः अकाल में सारस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण–2015, पृ0 11 ।
11. सिंह, केदारनाथ : उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति–2009, पृ0 81 ।